(2024) 8 एस0सी0आर0 121: 2024 आई एन एस सी 586

श्री दत्तात्रेय

बनाम

शरनप्पा

(दाण्डिक अपील सं0 3257 वर्ष 2024)

07 अगस्त 2024

बी0वी0 नागरत्ना तथा आगस्टीन जार्ज मसीह, रचयिता, न्यायमूर्तिगण

विचारणीय मुद्दा

क्या उच्च न्यायालय ने अपने निर्णय दिनांक 03.03.2023 द्वारा परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 138 के अधीन दण्डनीय अपराध हेतु प्रस्तावित परिवाद मामले में प्रत्यर्थी के दोषमुक्ति को न्यायानुसार अभिपुष्ट किया था।

शीर्ष टिप्पणियाँ

परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 - धारा 118, 138, 139- परिवादी- अपीलार्थी का मामला यह है कि प्रत्यर्थी ने इससे दो लाख रूपया उधार लिया था - उक्त ऋण के विरूद्ध प्रत्यर्थी ने भुनाने के विरूद्ध प्रत्याभूति के रूप में चेक जारी किया था - चूँकि प्रत्यर्थी बार-बार अनुरोधो के बावजूद ऋण चुकता करने मे असफल था, अपीलार्थी ने संबंधित चेक को भुनाने हेतु प्रस्तुत किया था, बैंक मेमो के अनुसार, चेक "अपर्याप्त निधि" के कारण अनादृत हो गया था- अपीलार्थी द्वारा माँग नोटिस भेजा गया था- माँग नोटिस के जवाब में, प्रत्यर्थी ने दावा किया था कि अपीलार्थी द्वारा किया गया अभियोग मिथ्या है - अपीलार्थी ने परिवाद मामला दाखिल किया था -विचारण न्यायालय ने प्रत्यर्थी के पक्ष में न्यायनिर्णीत किया था- उच्च न्यायालय द्वारा निर्णय की पुष्टि किया गया था- हस्तक्षेप आवश्यक है या नही:

अभिनिर्धारित: सुस्थापित विधिक दृष्टिकोण वर्तमान तथ्यात्मक आव्यूह के संबंध में लागू करते हुए, यह स्पष्ट है कि अपीलार्थी के कथनो के अनुसार प्रत्यर्थी द्वारा चेक के उपस्थापन किये जाने के समय से संबंधनीय अपीलार्थी द्वारा अपने प्रति-परीक्षा के विरूद्ध प्रस्तावित परिवाद में विरोधाभास मौजूद था - यह इस आशय का है कि जबकि अपीलार्थी ने चेक को प्रतिभूति के रूप में ऋण देने के समय पर जारी किये जाने का दावा किया था, फिर भी, इसके कथन के अनुसार प्रति-परीक्षा के दौरान यह प्रकट किया गया था कि इसे तब उपस्थापित किया गया था जब अभिवृद्धि के छह माह के अवधि के पश्चात् अभिकथित ऋण धनराशि प्रतिसंदाय करने हेतु अभिकथित माँग को प्रत्यर्थी के समक्ष उठाया गया था - इसके अलवा प्रत्यर्थी को दिये गये ऋण के आशय के संबंध में अपीलार्थी द्वारा अपने आयकर विवरणी में वित्तीय क्षमता या अभिस्वीकृति नही था - आगे भी अपीलार्थी यह समझाने मे अक्षम नही रहा है कि कब उक्त ऋण को प्रत्यर्थी के पक्ष में अभिदाय किया गया था न ही वह स्पष्ट करने में सक्षम रहा है कि कैसे एम के पक्ष में अभिकथित रूप से प्रत्यर्थी द्वारा जारी चेक वर्तमान धारक अर्थात् अपीलार्थी के हाथो में पहुँचा था - विचारण न्यायालय ने ठीक ही संप्रेक्षित किया था कि अपीलार्थी वैध रूप से वसूलीय ऋण के वैध अस्तित्व का भी अभिवचन करने में सक्षम नही है क्योकि चेक का सर्वथा जारी किया जाना पक्षकारों द्वारा पेश साक्ष्य में भ्रांतियो तथा विरोधाभासो पर आधारित संदिग्ध है - इसके अलावा, तथ्य कि प्रत्यर्थी ने सादे कागज पर लिखे

गये समझौते पर अपना हस्ताक्षर अंकित किया था तथा स्टाम्प पेपर नही जैसा अपीलार्थी द्वारा उपस्थापित किया गया है, मामले में एक दूसरा संदेह पैदा करता है - चूँकि अभियुक्त अपीलार्थी द्वारा उपस्थापित मामले पर संदेह की छाया को बिखरने मे सक्षम रहा है, इसलिए इसने सफलतापूर्वक परक्राम्य लिखत अधिनियम 1881 की धारा 139 द्वारा अनुवद्ध उपधारणा का खण्डन किया है - वर्तमान मामला प्रत्यर्थी के दोषमुक्ति का पक्षपोषण करने वाले तथ्य के समवर्ती निष्कर्षो के विरूद्ध चुनौती से संबंधित है, यह सुस्थापित है कि यह न्यायालय तब तक सामान्यतया भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 मे समाविष्ट स्वतंत्रता के सिद्धान्त पर विचार करते हुए इस प्रकार के विचार मे हस्ताक्षेप नही करेगा जब तक अनुचितता स्पष्ट रूप से उपलब्ध न हो तथा अप्रतिरोध्य कारण न हो - इस प्रकार उच्च न्यायालय द्वारा पूर्वोक्त आक्षेपित निर्णय दिनांक 03.03.2023 को वर्तमान चुनौती सभी गुणावगुण से रहित है तथा किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नही है। [पैरा 27, 29, 31 (ii) 33]

परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 - धारा 138 के अधीन कार्यवाहियों का अवलंव लेने हेतु तीन आवश्यक शर्ते:

अभिनिर्धारित: परक्राम्य लिखत अधिनियम 1881 तीन आवश्यक शर्तो को सम्मिलित करता है जिसे विधि के उक्त प्रावधानों का अवलंव लिये जाने के पहले पूरा किया जाना चाहिए - सर्वप्रथम चेक को इसके वैधता के अवधि के अन्दर उपस्थपित किया जाना चाहिए था- दूसरा, भुगतान की माँग जारी करने वाले को चेक के उपस्थापक द्वारा किया जाना चाहिए था तथा अंत में, लेखीवाल को मांग के प्राप्त करने क 15 दिनो के अवधि के अन्दर धनराशि को अदा करने में असफल होना चाहिए था। [पैरा- 14]

परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 - धारा- 138 - परिसीमा की अवधि:

अभिनिर्धारित: परक्राम्य लिखत अधिनियम 1881 की धारा 138 के प्रयोजन हेतु परिवाद दाखिल करने के एक माह के परिसीमा अवधि को निर्दिष्ट करते हुए, यह परक्राम्य लिखत अधिनियम 1881 की धारा 138 के परन्तुक (ग) के अनुसार 15 दिनों के विहित अवधि के अन्दर चेक के लेखीवाल द्वारा उपस्थापक को अपने दायित्व के उन्मोचन में असफल होने के पश्चात आरंभ होता है - परक्राम्य लिखत अधिनियम 1881 की धारा 138 तथा 142 को एक साथ पढ़ने से यह स्पष्ट होता है कि वादहेतुक मात्र लेखीवाल के अदा करने के विफलता के पश्चात, नोटिस प्राप्त करने के पश्चात पैदा होता है तथा परिवादी पूर्व अनुध्यात विभिन्न प्रक्रमों पर संबंधित लेखीवाल के विरूद्ध कई परिवादों को आरम्भ करने से निर्वन्धित होता है । (पैरा 16)

परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 - धारा 143 - संक्षिप्त विचारण - अभियुक्त की हाजिरी - अजमानतीय वारंट:

अभिनिर्धारित:- अध्याय 8 के संशोधन में वर्णित इस प्रकार के उद्देश्य के आलोक में, संसद ने परक्राम्य लिखत अधिनियम 1881 की धारा 143 के आधार पर परक्राम्य लिखत अधिनियम 1881 की धारा 138 के अधीन कार्यवाहियों के दौरान अपनाये जाने वाले दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 260 से 265 के प्रावधानों मे सम्मिलित संक्षिप्त विचारण के प्रक्रिया विहित किया था - इसलिए, यह संपे्रक्षित किया जा सकता है कि न्यायालय अभियुक्त व्यक्ति के हाजिरी के सबंध में उदार दृष्टिकोण अपनायेगा तथा जब तक अभियुक्त की उपस्थिति अपरिहार्य न हो, न्यायालय किसी आपवादिक परिस्थितियों के होने के मामले में छूट के लिए अनुज्ञात कर सकता

हैं - इसके अलावा, प्रथमतः अभियुक्त के अनुपस्थिति की दशा में अजमानतीय वारंट को जारी किये जाने से किसी परिस्थिति के कारण बचा जायेगा (पैरा- 17)

परक्राम्य लिखित अधिनियम, 1881 - धारा 139 धारक के पक्ष में उपधारणा:

अभिनिर्धारितः पूर्वोक्त उपधारणा यह उपधारित करने के लिए परक्राम्य लिखत अधिनियम 1881 की धारा 138 के अधीन अपराध हेतु विचारण करने वाले न्यायाल पर बाध्यता हो जाता है कि प्रश्नगत चेक को विशेष दायित्व के उन्मोचन हेतु अभियुक्त के लेखीवाल द्वारा जारी किया गया था- अभिव्यक्ति ''उपधारित करेगा'' का प्रयोग उक्त उपधारणा का खण्डन करने के प्रयोजन हेतु साक्ष्य प्रस्तुत करने के अभियुक्त के अधिकार के संबंध मे पहेली को सुधारता हंै - इसके अलावा, इस प्रकार क उपधारणा का परिणाम यह होता है कि सुसंगत दस्तावेजो के साथ परिवाद दाखिल करने के पश्चात, तद्द्वारा प्रथम दृष्टया लेखीवाल के विरूद्ध मामले को साबित करते हुए, उक्त उपधारणा का खण्डन करने के लिए अकाट्य सामग्री तथा साक्ष्य पेश करने के संबंध में लेखीवाल या अभियुक्त पर सबूत का भार स्थानान्तरित करता है तथा जैसा संभावनाओं के प्रबलता पर आधारित लक्ष्मी डाइकेम बनाम गुजरात राज्य तथा अन्य में साबित है (पैरा-19)

विधि शास्त्र - दाण्डिक विधि शास्त्र - स्वतन्त्रता का मर्म- निर्दोषिता की उपधारणा:

अभिनिर्धारत: दाण्डिक विधि शास्त्र स्वतंत्रा के मूलभूत मर्म तथा निर्दोषिता के उपधारणा पर तब तक बल नही देता है जब तक दोष साबित नही हो जाता है - यह उपधारणा दोषमुक्ति के एक ही निष्कर्षो के आधार पर प्रोत्साहित करता है- इसलिए, इस न्यायालय को दोषमुक्ति के विरूद्ध चुनौती पर विचार करते हुए अधिक सतर्क होना चाहिए क्योंकि उक्त उपधारणा सुतार्किक अनुकूल परिणाम के आधार पर प्रबलित होता है- परिणामस्वरूप उक्त दोहरे उपधारणा के अनुसरण में अभियोजन पक्ष पर भार और बोझिल हो जाता है। [पैरा 31(i)]

दाण्डिक विधि - जहाँ दो विचार संभव है- दोषमुक्ति का एक ही निष्कर्ष:

अभिनिर्धारित: जहां दो विचार संभव है, तब यह न्यायालय सामान्यतया दोष मुक्ति के एक ही निष्कर्षो में हस्तक्षेप नही करेगा तथा नही उलटेगा - फिर भी जहाँ स्थिति इस प्रकार की है कि एक मात्र निष्कर्ष जिस पर साक्ष्य के व्यापक मूल्यांकन से पहुँचा जा सकता है, प्रदर्शित होता है कि गंभीर घोर अन्याय किया गया है तब इस प्रकार के समवर्ती विचार के होते हुए भी, यह न्यायालय स्वयं प्रतिकूल विचार अपनाने के लिए नही रोकेगा (उत्तर प्रदेश राज्य बनाम दान सिंह) [पैरा 31 (iii)]

दाण्डिक विधि - अभियुक्त का पक्षपोषण करने वाला एक ही निष्कर्ष - कब हस्तक्षेप आवश्यक है:

अभिनिर्धारित: अभियुक्त का पक्षपोषण करने वाले एक ही निष्कर्षो के स्थितियों में, हस्तक्षेप आवश्यक होता है जहाँ विचारण न्यायालय ने तथ्य के विवाद्यक को विरचित करने मे गलत दृष्टिकोण अपनाया था तथा अपीलीय न्यायालय विचारण न्यायालय के विचार के पुष्टि तक, विधिक उपधारणा का खण्डन करने में अभियुक्त द्वारा पेश साक्ष्य के मूल्यांकन मे अभाव था। (राजेश जैन बनाम अजय सिंह)- इसके अलावा, न्यायहितों की रक्षा करने के लिए इस प्रकार का हस्तक्षेप आवश्यक हो जाता है जब दोषमुक्ति कुछ असंगत आधारो या किसी मूलभूत साक्ष्यिक सामग्री के पुर्नमूल्यांकन में भ्रांतियो या विधि के स्पष्ट त्रुटि पर आधारित होता है या नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तो का पालन न किये जाने के मामलों मे या निर्णय स्पष्ट रूप से अन्यायपूर्ण

होता है या जहाँ दोषमुक्ति जो मौलिक रूप से अभियुक्त को संदेह का लाभ देने के सिद्धान्त के अतिशयोक्तिपूर्ण पालन पर आधारित है, अपास्त किये जाने योग्य है - ऐसे मामलो मे अधिकार जहां न्यायालय साक्ष्यों के सरसरी तौर पर परीक्षा के पश्चात अभियुक्त तथा इसके द्वारा किये गये अपराधिता के बीच संबंध को अलग कर देता है (पंजाब राज्य बनाम गुरप्रीत सिंह तथा अन्य एव राजेश प्रसाद बना बिहार राज्य [पैरा 31 (v)(vi)]

उद्धृत निर्णय जन्य विधि

हितेन पी0 दलाल बनाम ब्रतीन्द नाथ बनर्जी (2001) 3 एससीआर 900 (2001) 6 एससीसी 16; के0एन0 वीणा बनाम मुनियाप्पन तथा एक अन्य (2001) सम्पूरक 4 एससीआर 374, (2001) 8 एससीसी 458; बाबू बनाम केरल राज्य (2010) 9 एससीआर 1039; (2010) 9 एससीसी 189 - भरोसा किया गया।

रंगप्पा बनाम श्री मोहन (2010) 6 एससीआर 507: (2010) 11 एससीसी 441; आईसीडीएस लि0 बनाम वीना शबीर तथा एक अन्य (2002) अनुपूरक 1 एससीआर 488: (2002) 6 एससीसी 426ः सदानन्द भाद्रन बनाम माधवन सुनील कुमार (1998) अनुपूरक 1 एससीआर 178ः (1998) 6 एससीसी 514; के0 भाष्करन बनाम संकरन विद्या बालन तथा एक अन्य (1999) अनुपूरक 3 एससीआर 271; (1999) 7 एससीसी 510; लक्ष्मी डाइकेम बनाम गुजरात राज्य तथा अन्य (2012) 11एससीआर 466; (2012) 13 एससीसी 375, राजेश जैन बनाम अजय सिंह (2023) 13 एससीआर 788ः (2023) 10 एससीसी 148; वीर सिंह बनाम मुकेश कुमार (2019) 2 एससीआर 24: (2019) 4 एससीसी 197; उत्तर प्रदेश राज्य बनाम दान सिंह (1997) 1 एससीआर 764; (1997) 3 एससीसी 747; पंजाब राज्य बनाम गुरप्रीत सिंह तथा अन्य (2024) 2 एससीआर 1039; (2024) 4 एससीसी 469; राजेश प्रसाद बनाम बिहार राज्य (2022) 3 एससीआर 1046; (2022) 3 एससीसी 471; श्रीमती राजको स्टील इंटरप्राइजेज बनाम कविता शराफ तथा एक अन्य (2024) 4 एससीआर 255; (2024) एससीसी आनलाइन एससी 518 - निर्दिष्ट।

अधिनियमो की सूची

परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881; भारत का संविधान; दण्ड संहिता 1860; दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973

प्रमुख शब्दो की सूची

परक्राम्य लिखत; परक्राम्य लिखत अधिनियम 1881 की धारा 138; परक्राम्य लिखत अधिनियम 1881 की धारा 118; परक्राम्य लिखत अधिनियम 1881 की धारा 139; चेक धारक के पक्ष में उपधारणा; संक्षिप्त विचारण; अभियुक्त की हाजिरी; अजमानतीय वारंट, विशेष दायित्व का उन्मोंचन, उपधारणा का खण्डन; अकाट्य सामग्री तथा साक्ष्य; संभाव्यताओं की प्रवलता; संदाय करने की लेखीवाल की विफलता; माँग नोटिस के प्राप्ति; वित्तीय क्षमता; वैध रूप से वसूलीय ऋण; चेक का जारी करना, साक्ष्य में भ्रांतिया तथा विरोधाभास; तथ्य का एक ही निष्कर्ष; संविधान का अनुच्छेद 21।

मामले की उत्पत्ति

दाण्डिक अपीलीय अधिकारिताः दाण्डिक अपील सं0 3257 वर्ष 2024 सीआरएलए सं0 200139 वर्ष 2019 में कर्नाटक उच्च न्यायालय के निर्णय तथा आदेश दिनांक 03.03.2023 से

अधिवक्तागण

आनंद संजय एम0 नूली, वरिष्ठ अधिवक्ता, सुश्री नूली एवं नूली, सुश्री अखिला वाली, सुरज कौशिक, अगम शर्मा, अपीलार्थी के अधिवक्तागण

सुश्री सुप्रीता शरन गौड़ा, शसगौड़ा पाटिल, ज्योतिश पाण्डेय, प्रत्यर्थी के अधिवक्तागण

सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय/आदेश

निर्णय

आगस्टीन जार्ज मसीह, न्यायमूर्ति

1. अनुमति प्रदान की गई।

2. वर्तमान अपील को आरंभ में इस न्यायालय के समक्ष याचिका के रूप में अधिमानित किया गया था, जिसे कर्नाटक उच्च न्यायालय कालाबुरागी द्वारा दाण्डिक अपील सं0 200139 वर्ष 2019 में आक्षेपित निर्णय दिनांक 03.03.2023 के विरूद्ध प्रस्तावित किया गया है जिसके द्वारा विद्वान एकल न्यायमूर्ति ने परक्राम्य लिखत अधिनियम 1881 (एतस्मिन्पश्चात पर0 लि0 अधिनियम 1881 के रूप में निर्दिष्ट) की धारा 138 के अधीन दण्डनीय अपराध हेतु प्रस्तावित परिवाद मामला सं0 468 वर्ष 2014 में प्रत्यर्थी के दोषमुक्ति की पुष्टि किया था।

3. वर्तमान चुनौती को उद्भूत करने वाला तथ्यात्मक पृष्ठभूमि यह है कि अपीलार्थी मूल परिवादी है जो विगत छह वर्षो से एक मात्र प्रत्यर्थी को जानने का दावा करता है तथा इसने परिवार के जरूरतो एवं वाससुविधा के कारण अपीलार्थी से रू0 2,00,000/- (दो लाख मात्र) उधार लिया था। उक्त ऋण के विरूद्ध प्रत्यर्थी ने चेक सं0 015639 जारी किया था जिसे प्रतिसंदाय के विरूद्ध प्रत्याभूति के रूप में बैंक आफ इंडिया पर आहरित किया गया था। इसे इसके छह माह के अवधि के अन्दर उक्त ऋण धनराशि का प्रतिसंदाय करना था। इस आशय का समझौता भी दोनों पक्षकारों के बीच हस्ताक्षरित था।

4. फिर भी, चूँकि प्रत्यर्थी बारंबार अनुरोधों के बावजूद ऋण का प्रतिसंदाय करने में असफल था, अपीलार्थी ने 22.10.2013 को भुनाने हेतु संबंधित चेक उपस्थापित किया था, लेकिन फिर भी, बैंक मेमो दिनांक 24.10.2013 के अनुसार, चेक ''अपर्याप्त निधि'' के कारण अनादृत हो गया था।

5. चेक के उक्त अनादर से व्यथित, अपीलार्थी द्वारा प्रत्यर्थी को मांग नोटिस दिनांक 31.10.2013 भेजा गया था, जिसके द्वारा अपीलार्थी की ओर से अधिवक्ता ने अभिकथित किया है कि प्रत्यर्थी ने जानबूझकर इसके साथ छल किया था तथा अपने दायित्व के उन्मोचन हेतु कोई प्रयास नही किया था। तद्नुसार, प्रत्यर्थी ने कथित तौर पर परक्राम्य लिखत अधिनियम 1881 की धारा 138 तथा भारतीय दण्ड संहिता, 1860 (एतस्मिन्पश्चात भा0द0सं0 1860 के रूप में निर्दिष्ट) की धारा 420 के अधीन दण्डनीय अपराधों को किया था।

6. तत्पश्चात्, प्रत्यर्थी ने जवाब नोटिस दिनांक 11.11.2013 प्रस्तावित किया था जिसके द्वारा इसने दावा किया था कि अपीलार्थी द्वारा किया गया अभियोग मिथ्या तथा अन्य बातो के साथ ऋण संव्यवहार के प्रासंगिक विवरणों से रहित है, उक्त ऋण के अधिदाय

के समय तथा तिथि, जिसे जैसा दावा किया गया हे का कभी भी अधिदाय नही किया गया था।

7. उक्त जवाब नोटिस के जरिए प्रत्यर्थी के जवाब से असंतुष्ट, अपीलार्थी ने दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 (एतस्मिन्पश्चात दण्ड सं0 1973 के रूप में निर्दिष्ट) की धारा 200 के अधीन प्राइवेट परिवाद सं0 991 वर्ष 2013 प्रस्तावित किया था। उक्त परिवाद को न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी गुलवर्ग के समक्ष सीसी/468/2014 के रूप मे्रं पंजीकृत किया गया था। विचारण न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियों के हिस्सा के रूप में, अपीलार्थी ने स्वयं को अभियोजन साक्षी-1 के रूप में परीक्षित किया था, जबकि प्रत्यर्थी ने स्वयं को प्रतिरक्षा साक्षी-01 के रूप मे परीक्षित किया था। फिर भी, परवर्ती ने अपनी ओर से किसी दस्तावेज को प्रस्तुत नही किया था। प्रत्यर्थी का अभिवाक् यह था कि संबंधित चेक को प्रतिभूति प्रयोजनों हेतु वर्ष 2012 में श्री मल्लिकार्जुन के पक्ष में जारी किया गया था, फिर भी, इसने इसे प्रत्यर्थी को वापस नही किया था तथा के बजाय गाँव छोड़ दिया था। उक्त तर्क पर विचार करते हुए, विचारण न्यायालय ने संप्रेक्षित किया था कि प्रत्यर्थी यह बताने में असफल था कि कैसे चेक अपीलार्थी के हाथो में पहुँचा था तथा किस उद्देश्य के लिए चेक श्री मल्लिकार्जुन को जारी किया गया था।

8. अपीलार्थी के प्रति-परीक्षा के दौरान कथन के हिस्सा के रूप में यह भी प्रकट किया गया था कि चेक को आरंभ में अपीलार्थी को प्रतिभूति चेक के रूप में नही दिया गया था। इसके बजाय, इसे अभिकथित रूप से प्रत्यर्थी द्वारा तद्द्वारा छः माह के अवधि के पश्चात अपीलार्थी के विरूद्ध विद्यमान अपने दायित्व का प्रतिसंदाय करने में असफल होने के पश्चात अपीलार्थी को दिया गया था। न्यायालय ने आगे संप्रेक्षित किया था कि अपने मामले की सहायता करने के लिए अपीलार्थी द्वारा किये गये समझौते में समझौता के निवंधनो के विरूद्ध प्रत्यर्थी का हस्ताक्षर शामिल नही है, बल्कि स्वयं स्टाम्प पेपर पर प्रत्यर्थी द्वारा हस्ताक्षर किया गया है तथा यह विधि की दृष्टि में संधार्य नही है। न्यायालय ने अपीलार्थी के आयकर विवरणी की छानबीन करने के लिए आगे बढ़ा था, जहाँ से यह प्रकट होता है कि अपीलार्थी आयकर विभाग के अपने विवरणी के हिस्से के रूप में अभिकथित ऋण संव्यवहार को घोषित करने में असफल था। तद्नुसार अपने निर्णय दिनांक 18.10.2019 द्वारा, विचारण न्यायालय ने प्रत्यर्थी के पक्ष मे न्यायनिर्णीत किया था, परिणाम स्वरूप अपीलार्थी द्वारा प्रस्तावित परिवाद को खारिज किया गया था तथा प्रत्यर्थी को दोषमुक्त किया गया था।

9. विचारण न्यायालय के निर्णय द्वारा व्यथित, अपीलार्थी दाण्डिक अपील सं0 200139 वर्ष 2019 में कर्नाटक उच्च न्यायालय गया था, जिसने संप्रेक्षित किया कि, सर्व सम्मति से, अपीलार्थी के कथन में विरोधाभास है कि कब चेक इसके पक्ष में जारी किया गया था। इसके अलावा, जैसा रंगप्पा बनाम श्री मोहन (2010) 6 एससीआर 507; (2010) 11 एससीसी 441 मे इस न्यायालय के निर्णय मे अधिकथित किया गया था, परक्राम्य लिखत अधिनियम 1881 की धारा 139 के अधीन उपधारणा एक खण्डनीय उपधारणा है। अपने पक्ष में ऋण देने के अपीलार्थी के वित्तीय क्षमता के संबंध में प्रत्यर्थी का इसके द्वारा उन्मोचित किया जाना था तथा ऐसा करने मे असफल होने पर, यह उपधारित किया

जायेगा कि ऋण संव्यवहार नही किया गया था। तद्नुसार विचारण न्यायालय के निष्कर्षो की पुष्टि आक्षेपित निर्णय दिनांक 03.03.2023 मे की गई थी।

10. तत्पश्चात् अपीलार्थी ने इन आधारों पर उक्त आक्षेपित निर्णय को चुनौती देने में इस न्यायालय में आया था कि चूँकि संबंधित चेक पर हस्ताक्षर प्रत्यर्थी द्वारा स्वीकृत था, अपीलार्थी परक्राम्य लिखत अधिनियम 1881 की धारा 139 के अधीन सफलतापूर्वक उपधारणा को उठाने में सक्षम था तथा प्रत्यर्थी के निवेदनों के अनुसार, वह उक्त उपधारणा का खण्डन करने मे असफल था। इसने यह भी पेश किया था कि उच्च न्यायालय द्वारा रंगप्पा (ऊपर) में निर्णय पर भरोसा अनुचित है तथा संभावनाओं के प्रवलता के मानक का अनुसरण करते हुए भी, प्रत्यर्थी अपने भार का निर्वहन करने में असफल था।

11. अपीलार्थी के विद्धान वरिष्ठ अधिवक्ता तथा प्रत्यर्थी की ओर से विद्धान अधिवक्ता को सुनने के पश्चात, परक्राम्य लिखित अधिनियम 1881 के प्रयोज्य प्रावधानों तथा अन्य, यदि कोई है के उपयुक्त विधि के दृष्टिकोण पर विचार विमर्श करना आवश्यक है।

12. पहले, चेक के अनादर के मामले पर विचार भा0द0सं0 1860 की धारा 420 सपठित धारा 415 के प्रावधानों के जरिए किया गया था। चेको के स्वीकार्यता को बढ़ाने के लिए तथा दण्डात्मक तूलिका के साथ चेक के अनादर से उद्भूत दायित्व के चित्रण के द्वारा ईमानदार लेखीवाल के उत्पीड़न को रोकने के लिए पर्याप्त सुरक्षोपायो का उपबंध करने के लिए, अध्याय 8 को पुरः स्थापित करते हुए परक्राम्य लिखित अधिनियम 1881 में संशोधन को पूरा किया गया था। वहां से, वैकिंग चैनलो के माध्यम तथा कार्यान्वयन एवं इनके प्रभावोत्पादकता के जरिए संव्यवहारों में विश्वसनीयता को बढ़ाने की कोशिश की गई थी। परक्राम्य लिखत अधिनियम 1881 की धारा 138 को निम्नवत् दोहराया जाता है:

"138. खाते में अपर्याप्त निधियों, आदि के कारण चेक का अनादर।

जहाँ किसी व्यक्ति द्वारा किसी ऋण या अन्य दायित्व के पूर्णतः या भागतः उन्मोचन के लिए किसी बैंककार के पास अपने द्वारा रखे गये खातो में से किसी अन्य व्यक्ति को किसी धनरशि के संदाय के लिए लिखा गया कोई चेक बैंक द्वारा संदाय किए बिना या तो इस कारण लौटा दिया गया है उस खाते में जमा धनराशि उस चेक का आदर करने के लिए अपर्याप्त हैं या वह उस रकम से अधिक है जिसका बैंक के साथ किये गये करार द्वारा उस खाते में से संदाय करने का ठहराव किया गया है, वहाँ ऐसे व्यक्ति के बारे में यह समझा जायेगा कि उसने अपराध किया है और वह इस अधिनियम के किसी अन्य उपबंध पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, कारावास से, जिसकी अवधि दो वर्ष तक की हो सकेगी या जुर्माने से, जो चेक की रकम का दुगुना तक हो सकेगा, या दोनो से दण्डनीय होगा:

परन्तु इस धारा में अंतर्विष्ट कोई बात तब तक लागू नही होगी जब तक -

(क) वह चेक उसके लिखे जाने की तारीख से छह माह की अवधि के भीतर या उसकी विधिमान्यता की अवधि के भीतर जो भी पूर्वतर हो, बैंक को प्रस्तुत न किया गया हो;

(ख) चेक का पाने वाला या धारक, सम्यक् अनुक्रम में चेक के लेखीवाल को असंदत्त चेक के लौटाए जाने के बावत बैंक से उसे सूचना के प्राप्ति के तीस दिनों के भीतर, लिखित रूप से सूचना देकर उक्त धनराशि के संदाय के लिए माँग नही करता है, और

(ग) इस चेक का लेखीवाल, चेक के पाने वाले को या धारक को उक्त सूचना के प्राप्ति के पन्द्रह दिनों के भीतर उक्त धनराशि का संदाय सम्यक् अनुक्रम मे करने मे असफल नही रहता है।

स्पष्टीकरण- इस धारा के प्रयोजनो के लिए ''ऋण या अन्य दायित्व'' से विधितः प्रवर्तनीय ऋण या अन्य दायित्व अभिप्रेत है।

13. इस न्यायालय ने **आईसीडीएस लि0 बनाम बीना शबीर तथा एक अन्य** (2002) अनुपूरक 1 एससीआर 488; (2002) 6 एसीसी 426 में अभिनिर्धारित किया है कि परक्राम्य लिखत अधिनयम 1881 की धारा 138 के अधीन कार्यवाहियों को आरंभ किया जा सकता है भले ही चेक को आरंभ में प्रतिभूति के रूप में जारी किया गया था तथा अपर्याप्त निधियों के कारण तत्पश्चात् अनादृत किया गया था। संबंधित चेक का आदर करने की विफलता को स्वतः परक्राम्य लिखित अधिनियम- 1881 की धारा 138 के अधीन अपराध करने के रूप में माना जाता है।

14. परक्राम्य लिखित अधिनियम के तीन आवश्यक शर्ते सम्मिलित है जिसे विधि के उक्त प्रावधान का अवलंव लिये जाने के पहले पूरा किया जाना चाहिए। सर्वप्रथम चेक को इसके वैधता के अवधि के अन्दर उपस्थापित किया जाना चाहिए था। दूसरा भुगतान की माँग चेक के उपस्थापक द्वारा जारी करने वाले से किया जाना चाहिए था तथा अंत में, लेखीवाल को माँग के प्राप्ति के 15 दिनो के अवधि के अन्दर धनराशि का संदाय करने में असफल होना चाहिए था। ये सिद्धान्त तथा पूर्वापेक्षाएँ सदानन्दन भाद्रन बनाम **माधवन सुनील कुमार (1998) अनुपूरक 1 एससीआर 178: (1998) 6 एससीसी 524** में इस न्यायालय के निर्णय के जरिए भली भाँति साबित होता है।। 30 दिनो की स्पष्ट परिसीमा है, जो उस अवधि से आरंम्भ होता है जब परक्राम्य लिखत अधिनियम 1881 की धारा 138 के अधीन कार्यवाहियों को आरंभ करने के लिए परक्राम्य लिखत अधिनियम 1881 की धारा 142 (ख) द्वारा कानून द्वारा विहित वादहेतुक पैदा हुआ था।

15. इसके अलावा, इस न्यायालय ने प्रतिपादित किया था दायित्व के लिए चेक का जारी कना, विहित अवधि के अन्दर चेक का उपस्थापन, अनादर के कारण इसकी वापसी, अभियुक्त को नोटिस तथा इसके 15 दिनों के अन्दर संदाय करने की विफलता, के0 भाष्करन बनाम संकरन विद्या बालन तथा एक अन्य (1999) अनुपूरक 3 एससीआर 271ः (1999) 7 एससीसी 510 मे निर्णय के अनुसार परक्राम्य लिखत अधिनियम 1881 की धारा 138 के अधीन अपराध हेतु अनिवार्य के रूप में लागू होता है। इसे तत्पश्चात् इस न्यायालय के कई निर्णयों तथा उच्च न्यायालयों के निर्णयों में दोहराया गया है।

16. परक्राम्य लिखित अधिनियम 1881 की धारा 138 के प्रयोजन हेतु परिवाद दाखिल करने के एक माह के परिसीमा के अवधि को निर्दिष्ट करते हुए, परक्राम्य लिखित अधिनियम 1881 की धारा 138 के परन्तुक (ग) के अनुसार यह चेक के लेखीवाल द्वारा 15 दिनों के

विहित अवधि के अन्दर उपस्थापक को अपने दायित्व का उन्मोचन करने मे असफल होने के पश्चात यह आरंभ होता है। परक्राम्य लिखत अधिनियम 1881 की धारा 138 तथा 142 को एक साथ पढ़ने से यह स्पष्ट होता है कि वादहेतुक मात्र नोटिस को प्राप्त करने तथा परिवादी को पूर्व अनुध्यात विभिन्न प्रक्रमों पर संबंधित लेखीवाल के विरूद्ध कई परिवादों को आरंभ करने से रोके जाने के पश्चात संदाय करने के लेखीवाल के विफलता के पश्चात् पैदा होता है।

17. इसके अलावा, अध्याय 8 के संशोधन में वर्णित इस प्रकार के उद्देश्य के आलोक में, संसद ने परक्राम्य लिखत अधिनियम 1881 की धारा 143 के आधार पर परक्राम्य लिखत अधिनियम 1881 की धारा 138 के अधीन कार्यवाहियों के दौरान अपनाये जाने वाले द0प्र0सं0 1973 की धारा 260 से 265 के प्रावधानों मे सम्मिलित संक्षिप्त विचारण की प्रक्रिया को विहित किया था। इसलिए, यह संप्रेक्षित किया जा सकता है कि न्यायालय अभियुक्त व्यक्ति के हाजिरी के संबंध में उदार दृष्टिकोण अपनायेगा तथा जब तक अभियुक्त की उपस्थिति अपरिहार्य न हो, न्यायालय किन्ही आपवादिक परिस्थितियों के होने के मामले में छूट अनुज्ञात कर सकता है। इसके अलावा, प्रथमतः अभियुक्त के अनुपस्थित होने की दशा में किसी परिस्थिति के कारण अजमानतीय वारंट जारी करने से बचा जायेगा।

18. चूँकि परक्राम्य लिखत अधिनियम 1881 की धारा 118 के आधार पर अनुध्यात उपधारणा अपरिहार्य होता है, इस उपधारणा का उपवंध करने के लिए इसी प्रकार धारा 139 को पुरःस्थापित किया गया था कि चेक धारक ने पूर्णतः या भागतः लेखीवाल के दायित्व का उन्मोचन करने के लिए संबंधित जारी चेक को प्राप्त किया था। इसलिए, इस समय पर, परक्राम्य लिखत अधिनियम 1881 की धारा 118 का संदर्भ करना अभीष्ट है, जिसे इस प्रकार दोहराया जाता हैः

"118. परक्राम्य लिखत के बारे में उपधारणाएँ

जब तक कि प्रतिकूल साबित नही कर दिया जाता है, निम्नलिखित उपधारणाएं की जाएगी:-

(क) प्रतिफल के विषय में- यह कि हर एक परक्राम्य लिखत प्रतिफलार्थ रचित या लिखी गई थी और यह कि हर ऐसी लिखत जब प्रतिगृहीत, पृष्ठांकित, परक्रामित या अन्तरित हो चुकी हो तब वह प्रतिफलार्थ, प्रतिगृहीत, पृष्ठांकित, परक्रामित या अन्तरित की गई थी;

(ख) तारीख के बारे- यह कि ऐसी हर परक्राम्य लिखत जिस पर तारीख पड़ी है, ऐसी तारीख का रचित या लिखी गई थी।

(ग) प्रतिग्रहण के समय के बारे में - यह कि हर प्रतिगृहीत विनियम-पत्र उसकी तारीख के पश्चात् युक्तियुक्त समय के अन्दर और उसकी परिपक्वता क पूर्व प्रतिगृहीत किया गया था;

(घ) अन्तरण के समय के बारे मे - यह कि परक्राम्य लिखत का हर अन्तरण उसकी परिपक्वता के पूर्व किया गया था;

(ड.) *पृष्ठाकनों के क्रम मे बारे मे -यह कि परक्राम्य लिखत पर विद्‌यमान, पृष्ठांकन उस क्रम मे किये गये थे जिसमे वे उस पर विद्‌यमान है;*

(च) *स्टाम्प के बारे मे -यह कि खोया गया वचन-पत्र, विनिमय-पत्र या चेक सम्यक्‌ रूप से स्टांपित था;*

(छ) *यह कि धारक सम्यक्‌ अनुक्रम-धारक है - यह कि परक्राम्य लिखत का धारक सम्यक्- अनुक्रम-धारक है परन्तु जहाँ कि लिखत उसके विधिपूर्ण स्वामी से या उसकी विधि पूर्ण अभिरक्षा रखने वाले किसी व्यक्ति से अपराध या कपट द्‌वारा अभिप्राप्त या विधि विरूद्‌ध प्रतिफल के लिए अभिप्राप्त की गई है वहाँ पर यह साबित करने का भार कि धारक सम्यक्-अनुक्रम-धारक है, उस पर है।*

परक्राम्य लिखित अधिनियम 1881 का अध्याय 13 जिसका धारा 118 एक हिस्सा है, इसमे अधिनियम के स्कीम में पेश किये जाने वाले साक्ष्य हेतु विशेष नियमों को अधिकथित करता है। जैसा उक्त प्रावधान का विषय प्रमाणित करता है, यह उस विस्तार तक लेखीवाल के विरूद्‌ध खण्डनीय उपधारणा उठाता है कि संबंधित परक्राम्य लिखत को तैयार किया गया था तथा तत्पश्चात्‌ विद्‌यमान प्रतिफलार्थ प्रतिगृहीत, पृष्ठांकित, परक्रामित या अन्तरित किया गया था तथा इस प्रकार के लिखत पर इस प्रकार नियत तिथि वह तिथि है जब संबंधित परक्राम्य लिखत को तैयार किया गया था। आगे यह भी उपधारित किया जाता है कि इसे इसके परिपक्वता के पहले अन्तरित किया गया था तथा यह कि क्रम जिसमें कई पृष्ठांकन इस प्रकार के लिखत पर दिखाई पड़ता है, यह इस पर माना गया क्रम है। अंत में, परक्राम्य लिखित का धारक उस स्थिति के अधीन इसके सम्यक्‌ अनुक्रम में एक है जहाँ संबंधित लिखत को विधिपूर्ण स्वामी से तथा अपराध जैसा किसी कानून के अन्तर्गत अनुध्यात है के वचन के जरिए या कपट के साधनों के जरिए इसके विधिपूर्ण अभिरक्षा से प्राप्त किये जाते समय इसके सम्यक्‌ अनुक्रम मे एक है, सम्यक्‌ अनुक्रम में इसके धारक होने को साबित करने का भार के बजाय इस प्रकार के धारक पर होता है।

19. तद्‌नुसार, सबसे पहले, परक्राम्य लिखत अधिनियम 1881 की धारा 139 के प्रावधान को एतस्मिन्पश्चात्‌ नीचे दोहराया जाता है।

139. धारक के पक्ष में उपधारणा- जब तक कि प्रतिकूल साबित न हो, यह उपधारणा की जायेगी कि चेक के धारक ने धारा 138 में निर्दिष्ट प्रकृति का चेक किसी ऋण या अन्य दायित्व के पूर्णतः या भागतः उन्मोचन के लिए प्राप्त किया है।

पूर्वोक्त उपधारणा यह उपधारित करने के लिए परक्राम्य लिखत अधिनियम 1881 की धारा 138 के अधीन उपराध हेतु विचारण करने वाले न्यायालय पर बाध्यता अपरिहार्य बनाता है कि प्रश्नगत चेक को विशेष दायित्व के उन्मोचन हेतु लेखीवाल या अभियुक्त द्‌वारा प्रश्नगत चेक को जारी किया गया था। अभिव्यक्ति ''उपधारित करेगा'' का प्रयोग उक्त उपधारणा का खण्डन करने के प्रयोजन हेतु साक्ष्य पेश करने के अभियुक्त के अधिकार से संबंधित पहेली को सुधारता है। इसके अलावा, इस प्रकार के उपधारणा का परिणाम यह है कि सुसंगत दस्तावेजो के साथ परिवाद दाखिल किये जाने के पश्चात्, तद्‌द्वारा प्रथम दृष्टया लेखीवाल के विरूद्‌ध मामला साबित करते हुए, उक्त उपधारणा का खण्डन करने के लिए अकाट्‌य सामग्री तथा साक्ष्य पेश करने के लिए लेखीवाल या

अभियुक्त पर सबूत का भार स्थानान्तरित करता है तथा जैसा संभावनाओं के प्रबलता पर आधारित **लक्ष्मी डाइकेम बनाम गुजरात राज्य तथा अन्य (2012) 11 एससीआर 466; (2012) 13 एससीसी 375** में साबित है।

20. वाणिज्यिक संव्यवहारों में प्राइवेट पक्षकारों तक सीमित इसके प्रभाव के साथ अधिकांश सिविल अपराध के प्रकृति में होने के नाते विनियामक अपराध के रूप में परक्राम्य लिखत अधिनियम 1881 की धारा 138 के अधीन परिकल्पित अपराध का वर्णन करते हुए, **रंगप्पा (ऊपर)** के निर्णय में 3 जजो की पीठ ने परक्राम्य लिखत अधिनियम 1881 कीे धारा 139 को उलटे भार खण्ड के उदाहरण के रूप में बल दिया था। ऐसा इसलिए किया गया है, क्योंकि न्यायालय ने संसद के आशय के आलोक में प्रतिपादित किया है, जिसे दाण्डिक व्यंजना वाले कानून में चेक के अनादर के कार्य के विशेष प्रस्तुत करने से चुना जा सकता है। इस प्रकार के विमर्शित स्थानन का अधस्थ उद्देश्य परक्राम्य लिखतो के विश्वसनीयता को भरना तथा बढ़ाना है। इसके अतिरिक्त उलटा भार खण्ड अपरिहार्य '' मुकदमें के अनुक्रम में अनुचित विलम्ब को रोकने के आदर्श वाक्य'' के रूप में कार्य करता है। आनुपातिकता के कटौती को अभिस्वीकृति देते हुए तथा इसके परक्राम्य लिखित अधिनियम 1881 की धारा 139 के निर्वचन को ध्यान में रखते हुए यह आगे अभिनिर्धारित किया गया था कि अभियुक्त को अनुचित उच्च सबूत के मानक के द्वारा उक्त उपधारणा का खण्डन करने के लिए बाध्य नही किया जा सकता है। हितेन पी0 दलाल बनाम ब्रतीन्द्रनाथ बनर्जी (2001) 3 एसीआर 900; (2001) 6 एससीसी 16 मे समन्वय पीठ द्वारा अधिकथित संप्रेक्षणों के आलोक में जिसके द्वारा यह स्पष्ट किया गया था कि खण्डन की जिम्मेवारी अभियुक्त द्वारा अंतिम रूप से नही ली जानी चाहिए, जिसे निम्नवत् दोहराया गया है।

> *''23. दूसरे शब्दो मे, बशर्ते कि विद्यमान विधि के उपधारणा के आधार को बनाने के लिए आवश्यक तथ्य, कानूनी निष्कर्ष निकालने के सिवाय कोई विवेकाधिकार न्यायालय के पास नही छोड़ा जाता है, लेकिन यह उस व्यक्ति को प्रवारित नही करता है जिसके विरूद्ध इसका खण्डन करने तथा प्रतिकूल साबित करने से उपधारणा निकाली जाती है। तथ्य को साबित कहाँ जाता है जब,*
>
> > *'स्वयं के समक्ष मामले पर विचार करने के पश्चात्, न्यायालय या तो इसके होने का विश्वास करता है, या इसके अस्तित्व को इतना संभाव्य मानता है कि विशेष मामले के परिस्थितियों में एक प्रज्ञावान व्यक्ति को इस कल्पना पर कार्य करना चाहिए कि यह विद्यमान है। (धारा 3, साक्ष्य अधिनियम)*
> >
> > *इसलिए, खण्डन अंतिम रूप से साबित किया गया नही होता है बल्कि इस प्रकार के साक्ष्य को इस प्रतिरक्षा के समर्थन में न्यायालय के समक्ष पेश किया जाना चाहिए कि न्यायालय को प्रतिरक्षा के होने पर विश्वास करना चाहिए या युक्तियुक्तता का मानक प्रज्ञावान व्यक्ति का होने के नाते इसके अस्तित्व को युक्तियुक्त रूप से संभाव्य मानता हैं।*

इसलिए, यह कहा जा सकता है कि परक्राम्य लिखत अधिनियम 1881 की धारा 138 के अधीन मामलों में प्रतिरक्षा का दायित्व अपना मामला युक्तियुक्त संदेह से परे साबित करने का नही होता है।

21. पूर्वोक्त चर्चा के आलोक में तथा जैसा हाल में **राजेश जैन बनाम अजय सिंह** (2023) 13 एससीआर 788 : (2023) 10 एससीसी 148 के निर्णय में इस न्यायालय द्वारा रेखांकित किया गया है, अभियुक्त निश्चायक साक्ष्य के द्वारा ऋण या दायित्व के न होने को साबित कर सकता है कि संबंधित चेक उपधारित ऋण या दायित्व के लिए या संभावनाओं के प्रवलता के मानक द्वारा परिस्थितिजन्य साक्ष्य के अभिवर्तन के जरिए जारी नही किया गया था।

22. चूकि उपधारणा मात्र धारक को प्रथम दृष्टया मामले को प्रदर्शित करने के लिए सक्षम् बनाता है यह मात्र इस आशय के साबित न किये जाने के प्रतिकूलता के अधीन विधि न्यायालय के समक्ष विद्यमान रह सकता है कि चेक का परक्राम्य लिखत प्रतिफलार्थ या किसी विद्यमान या भावी ऋण या दायित्व के उन्मोचन हेतु जारी नही किया गया था। इस पृष्ठभूमि में **वीर सिंह बनाम मुकेश कुमार** (2019) 2 एससीआर 24 : (2019) 4 एससीसी 197 मे 3 जजो के पीठ के निर्णय का संदर्भ करना प्रासंगिक है, जिसने धारित किया कि यदि निरंक चेक पर हस्ताक्षर स्वेच्छया अंकित किया गया स्वीकृत है, परक्राम्य लिखत अधिनियम 1881 की धारा 139 के अधीन उपधारणा को प्रवर्तित करना पर्याप्त है, भले ही चेक में सम्पूर्ण अन्त्तवस्तुओं के निष्पादन के परिणाम के संबंध में कोई स्वीकृति नही है।

23. इसलिए परक्राम्य लिखत अधिनियम 1881 की धारा 140 के प्रावधान का संदर्भ करना उपयुक्त है, जो परक्राम्य लिखत अधिनियम 1881 की धारा 138 के अधीन कार्यवाहियों पर विचार करते समय आपराधिक मनःस्थिति केे तत्वहीन होने का चिन्तन करता है। संसद का उक्त विधायी विवेक जो प्रावधान के निरा विषय मे आत्मसात है को निम्नवत् दोहरया जाता हैः

> "140. **प्रतिरक्षा, जो धारा 138 के अधीन किसी अभियोजन में अनुज्ञात नही की जा सकेगी - धारा 138** के अधीन किसी अपराध के लिए अभियोजन में यह कोई प्रतिरक्षा नही होगी कि जब लेखीवाल ने चेक जारी किया था तब उसके पास यह विश्वास करने का कोई कारण नही था कि चेक का, प्रस्तुत किये जाने पर, उस धारा में कथित कारणों से अनादर हो सकता है''

24. परक्राम्य लिखत अधिनियम 1881 के संशोधन अधिनियम वर्ष 1988 द्वारा विधान मण्डल द्वारा अपनाये गये इस विधिक कल्पना के जरिए इसने चेक के लेखीवाल को यह प्रतिरक्षा लेने के लिए वर्जित किया है कि प्रश्नगत चेक जारी करने के समय पर इसके पास यह विश्वास करने का कारण नही था कि इसका अनादर इस प्रकार के चेक धारक द्वारा उपस्थापित किये जाने पर, मुख्यतः तथा विशेष रूप से परक्राम्य लिखत अधिनियम 1881 की धारा 138 में रेखांकित कारणो पर किया जायेगा।

25. परक्राम्य लिखत अधिनियम 1881 की धारा 118, 139 तथा 140 का व्यापक संदर्भ गृहीत कल्पना को जन्म देता है जिसे **के0एन0 बीना बनाम मुनियाप्पन तथा एक अन्य**

(2001) अनुपूरक 4 एससीआर 374 : (2001) 8 एससीसी 458 में इस न्यायालय द्वारा निम्नवत् स्पष्ट किया गया थाः

> *" धारा 118 के अधीन, जब तक प्रतिकूल साबित नही हो जाता है, यह उपधारित किया जाना चाहिए कि परक्राम्य लिखत (चेक शामिल है) प्रतिफलार्थ बनाया गया था या तैयार किया गया था। धारा 139 के अधीन न्यायालय को उपधारित करना पड़ता है, जब तक प्रतिकूल साबित नही हो जाता है कि चेक धारक ने ऋण या दायित्व के पूर्णतः या भागतः उन्मोचन हेतु चेक प्राप्त किया था। इस प्रकार धारा 138 के अधीन परिवादों में, न्यायालय को उपधारित करना पड़ता है कि चेक को ऋणी के दायित्व हेतु जारी किया गया था। यह उपधारण खण्डनीय है। फिर भी, यह साबित करने का भार कि चेक को ऋण या दायित्व हेतु जारी नही किया गया था अभियुक्त पर है। उच्चतम न्यायालय ने हितेन पी0 दलाल बनाम ब्रतीन्द्रनाथ बनर्जी के मामले में समान विचार लिया है।"*

26. इसके अलावा, पूर्वोक्त कानूनी उपधारणा के खण्डन हेतु साक्ष्य पेश करने के पहलू पर **रंगप्पा (ऊपर) तथा राजेश जैन (ऊपर)** में इस न्यायालय के निर्णयों को एक साथ पढ़ना प्रासंगिक है जो यह स्पष्ट करने के लिए आगे बढ़ेगा कि अभियुक्त निःसन्देह परिवादी द्वारा पेश सामग्रियों पर भरोसा रख सकता है, जिसमें न केवल मूल परिवाद में परिवादी का कथन, बल्कि विधिक या मांग नोटिस में मामला, विचारण के परिवादी का मामला तथा जवाब नोटिस मे अभियुक्त का अभिवाक् धारा 313 द0प्र0स0 के अधीन इसका कथन या उन परिस्थितियों के संबध में विचारण में जिसके अन्तर्गत वचन पत्र या चेक निष्पादित किया गया था शामिल होगा। अभियुक्त को संबंधित कानूनी उपधारणा का खण्डन करने के लिए उक्त परिस्थितियों में अपनी ओर से कोई आगे या नया साक्ष्य पेश नही करना चाहिए।

27. उपरोक्त विधिक दृष्टिकोण को वर्तमान तथ्यात्मक आव्यूह के संबंध में लागू करते हुए, यह स्पष्ट है कि अपीलार्थी के कथनों के अनुसार प्रत्यर्थी द्वारा चेक के उपस्थापन के समय से संबंधनीय अपने प्रति-परीक्षा के विरूद्ध अपीलार्थी द्वारा प्रस्तावित परिवाद में विरोधाभास विद्यमान् था। यह इस आशय के संबंध मे है कि जबकि अपीलार्थी ने चेक को प्रतिभूति के रूप में ऋण देने के समय पर जारी किये जाने का दावा किया है, फिर भी, इसके कथन के अनुसार प्रति-परीक्षा के दौरान यह प्रकट हुआ था कि इसे तब उपस्थापित किया गया था जब अभिकथित ऋण धनराशि के प्रतिसंदाय हेतु अभिकथित माँग देने के छह माह के अवधि के पश्चात् प्रत्यर्थी के समक्ष उठाया गया था। इसके अलावा, प्रत्यर्थी को ऋण देने के आशय के संबंध में अपीलार्थी द्वारा अपने आयकर विवरणी में वित्तीय क्षमता या अभिस्वीकृति नही था। आगे यह भी कि अपीलार्थी यह प्रदर्शित करने में सक्षम नही रहा है कि कब उक्त ऋण को प्रत्यर्थी के पक्ष में दिया गया था न ही यह स्पष्ट करने में सक्षम रहा है कि कैसे श्री मल्लिकार्जुन के पक्ष में अभिकथित रूप से प्रत्यर्थी द्वारा जारी चेक वर्तमान धारक अर्थात् अपीलार्थी के हाथो में पहुँचा था।

28. सर्वसम्मति से, अपीलार्थी यह साबित करने में सक्षम है कि प्रश्नगत चेक पर हस्ताक्षर प्रत्यर्थी का था तथा **वीरसिंह (ऊपर)** में इस न्यायालय के निर्णय के संबंध में, उपधारणा का आदर्शतः उठना है। फिर भी, तथ्यात्मक आव्यूह के उपरोक्त निर्दिष्ट संदर्भ में, दिये गये ऋण के विवरणों को पेश करने की अपीलार्थी की असमर्थता तथा इसका परस्पर विरोधी कथन, इसमें विनिश्चयाधार परक्राम्य लिखत अधिनियम 1881 की धारा 139 के अधीन कानूनी उपधारणा को उद्भूत करने के आशय के संबंध में वर्तमान मामले पर समाघात नही करेगा। प्रत्यर्थी संभाव्यताओं के प्रबलता के जरिए अपने पक्ष में न्याय के तराजू के भार को स्थानान्तरित करने में समर्थ रहा है।

29. विचारण न्यायालय ने न्यायानुसार संप्रेक्षित किया था कि अपीलार्थी वैध रूप से वसूली योग्य ऋण के वैध अस्तित्व का भी अभिवचन करने मे सक्षम नही है क्योकि चेक का सर्वथा जारी करना पक्षकारो द्वारा पेश साक्ष्य मे भ्रान्तियों तथा विरोधाभासो पर आधारित संदिग्ध है। इसके अलावा, तथ्य की प्रत्यर्थी ने सादे कागज पर तैयार करार पर अपना हस्ताक्षर अंकित किया था तथा न कि स्टाम्प पेपर पर जैसा अपीलार्थी द्वारा उपस्थापित किया गया है, मामले में एक दूसरा संदेह पैदा करता है। चूॅकि अभियुक्त अपीलार्थी द्वारा उपस्थापित मामले पर संदेह की छाया को डालने में सक्षम रहा है, इसलिए इसने सफलतापूर्वक परक्राम्य लिखत अधिनियम 1881 की धारा 139 द्वारा अनुबद्ध उपधारणा का खण्डन किया है।

30. इसके अलावा, विचारण न्यायालय के निष्कर्षो की पुष्टि करते हुए, उच्च न्यायालय ने संप्रेक्षित किया है कि जबकि इसके द्वारा आहरित चेक पर तथा इसमे पक्षकारों के बीच समझौता पर प्रत्यर्थी का हस्ताक्षर स्वीकृत है, यदि जहाँ लेनदार के आर्थिक क्षमता कीे चिंता को अभियुक्त की ओर से उठाया गया है, इसका उन्मोचन परिवादी द्वारा अकाट्य साक्ष्य पेश करने के जरिए किया जाना चाहिए।

31. वर्तमान मामला प्रत्यर्थी के दोषमुक्ति का पक्षपोषण करने वाले तथ्य के एक ही निष्कर्षो के विरूद्ध चुनौती से सम्बन्धित है, एक ही निष्कर्षो द्वारा सहारा दिये गये दोषमुक्ति के विरूद्ध चुनौती का न्यायनिर्णयन करने के शक्ति के प्रयोग को रेखांकित करने वाले सिद्धान्तों के विश्लेषण की खोज करना अकाट्य होगा। निम्न विस्तृत सिद्धान्तों को न्यायिक निर्णयो के व्यापक विश्लेषण के पश्चात चुना जा सकता है:

(i) दाण्डिक विधि शास्त्र स्वतंत्रता के मौलिक मर्म तथा निर्दोषिता के उपधारणा पर तब तक बल नही देता है जब तक दोषी साबित नही कर दिया जाता है। इस उपधारणा को दोष-मुक्ति के एक ही निष्कर्षो के आधार पर प्रोत्साहन मिलता है। इसलिए, इस न्यायालय को दोषमुक्ति के विरूद्ध चुनौती पर विचार करते समय अधिक सावधान रहना चाहिए क्योंकि उक्त उपधारणा सुतार्किक अनुकूल परिणाम के आधार पर प्रवलित होता है। परिणामस्वरूप उक्त दोहरे उपधारणा के अनुसरण मे अभियोजन पक्ष पर भार और बोझिल हो जाता है।

(ii) दोषमुक्ति के एक ही निष्कर्षो के मामले में, यह न्यायालय सामान्यतया भारत के संविधान 1950 के अनुच्छेद 21 मे समाविष्ट स्वतंत्रता के सिद्धान्त पर विचार

करते हुए इस प्रकार के विचार में हस्तक्षेप नही करेगा, जब कि अनुचितता स्पष्ट रूप से उपलब्ध नही होता है तथा अप्रतिरोध्य कारण नही होता है।

(iii) जहाँ दो विचार संभव है, तब यह न्यायालय सामान्यतया दोषमुक्ति के एक ही निष्कर्षो मे हस्तक्षेप नही करेगा तथा नही उलटेगा। फिर भी जहाँ स्थिति इस प्रकार की है कि एकमात्र निष्कर्ष जिस पर साक्ष्य का व्यापक मूल्यांकन पहुँचा जा सकता है, यह प्रदर्शित होता है कि गंभीर घोर अन्याय किया गया है, तब, इस प्रकार के एक ही विचार के होते हुए भी, यह न्यायालय विरोधी विचार अपनाने के लिए स्वयं को नही रोकेगा। (देखिए उत्तर प्रदेश राज्य बनाम दान सिंह (1997) 1 एससीआर 764: (1997) 3 एससीसी 747)

(iv) यह न्याय निर्णीत करने के लिए कि क्या दोषमुक्ति का एक ही निष्कर्ष अनुचित है यह देखा जाना चाहिए कि क्या न्याय विफल हो रहा है। इस न्यायालय ने बाबू बनाम केरल राज्य (2010) 9 एससीआर 1039 : (2010) 9 एससीसी 189 में शब्द 'अनुचितता' को सीमा को इस प्रकार स्पष्ट किया है।

"यदि सुसंगत सामग्री की अनदेखी करते हुए या अपवर्जित करते हुए या असंगत/ग्राह्य सामग्री को ध्यान में रखते हुए निष्कर्षो पर पहुँचा गया है। निष्कर्ष को अनुचित कहा जा सकता है यदि यह साक्ष्य के महत्व के विरूद्ध है या यदि निष्कर्ष इस प्रकार अन्यायपूर्ण तरीके से तर्क का विरोध करता है जिससे अविवेक के दोष से ग्रसित हो।"

(v) अभियुक्त का पक्षपोषण करने वाले एक ही निष्कर्ष के स्थितियों में, हस्तक्षेप आवश्यक होता है जहाँ विचारण न्यायालय ने तथ्य के विवाद्यक को विरचित करने में गलत दृष्टिकोण अपनाया था तथा अपीलीय न्यायालय ने विचारण न्यायालय के विचार की पुष्टि करते हुए, विधिक उपधारणा का खण्डन करने में अभियुक्त द्वारा पेश साक्ष्य का मूल्यांकन नही किया था। (**देखिए राजेश जैन बनाम अजय सिंह (2023) 13 एससीआर 788 : (2023) 10 एससीसी 148)**

(vi) इसके अलावा, इस प्रकार का हस्तक्षेप न्यायहितो को बचाने के लिए आवश्यक हो जाता है जब दोषमुक्ति किसी मौलिक साक्ष्यिक सामग्री के पुर्नमूल्यांकन मे कुछ असंगत आधारो या भ्रांतियो या विधि के स्पष्ट त्रुटि पर या नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तो के पालन न किये जाने के मामलो मे आधारित होता है या निर्णय स्पष्ट रूप से अन्यायपूर्ण होता है या जहाँ दोषमुक्ति जो मौलिक रूप से अभियुक्त को संदेह का लाभ देने के सिद्धान्त के अतिशयोक्तिपूर्ण पालन पर आधारित होता है, अपास्त किये जाने योग्य है। ऐसे मामलो में बात जहाँ न्यायालय साक्ष्यों के सरसरी तौर पर परीक्षा के पश्चात् स्वयं द्वारा किये गये अपराधिता तथा अभियुक्त के बीच संबंध को अलग करता है। (देखिए **पंजाब राज्य बनाम गुरप्रीत सिंह तथा अन्य (2024) 2 एससीआर 1039 : (2024) 4 एससीसी 469 एवं राजेश प्रसाद बनाम बिहार राज्य (2022) 3 एससीआर 1046 : (2022) 3 एससीसी** 471)

32. उपरोक्त सिद्धान्तो के परिशीलन के पश्चात तथा इसे वर्तमान मामले के तथ्यों तथा परिस्थितियो के संबंध में लागू करते हुए, यह स्पष्ट है कि प्रत्यर्थी-अभियुक्त के मामले में अनुचितता नही है तथा साक्ष्य का अभाव नही है। एक ही निष्कर्षो मे साक्ष्यों तथा

तथ्यो के विस्तृत मूल्यांकन का बल है, इसलिए, उपरोक्त सम्मिलित सिद्धांतो के आलोक में हस्तक्षेप का समुचित आधार नही है। इसी प्रकार के तथ्यो में जैसा वर्तमान मामले मे है, जिसमे चेक के अनादर से उद्भूत दाण्डिक दायित्व अन्तवर्लित है, यह **न्यायालय मेसर्स राजको स्टील इंटरप्राइजेज बनाम कविता सराफ तथा एक अन्य (2024) 4** एससीआर 255, 2024 एससीसी आनलाइन एससी 518 में इसमे अभियुक्त के दोषमुक्ति के एक ही निष्कर्षो को उलटने से निरूत्साहित हुआ था तथा हस्तक्षेप न करने के सिद्धान्त को रेखांकित किया था, जब तक इस प्रकार का निष्कर्ष अनुुचित नही होता है या साक्ष्यिक पुष्टि से रहित होता है या विधि का प्रश्न नही होता है।

33. पूर्वोक्त सिद्धांतो तथा इसके आरोपित कारणो को अग्रसर करने मे, कर्नाटक उच्च न्यायालय कलाबुरागी द्वारा पूर्वोक्त आक्षेपित निर्णय दिनांक 03.03.2023 को वर्तमान चुनौती सभी गुणावगुण से रहित है तथा इस न्यायालय का कोई हस्तक्षेप आवश्यक नही है।

34. वर्तमान अपील को खारिज किया जाता है का आक्षेपित निर्णय दिनांक 03.03.2023 में उच्च न्यायालय के निष्कर्षो की पुष्टि की जाती है।

35. लंबित आवेदन, यदि कोई है, को भी निपटाया जाता है।

मामले का परिणाम: अपील खारिज

अंकित ज्ञान द्वारा शीर्ष टिप्पणियाँ तैयार की गई

(यह अनुवाद शिवा कान्त तिवारी पैनल अनुवादक के द्वारा किया गया)